भाखड़ा बाँध : मिथक, धारणाएँ और वास्तविकताएँ

मंथन अध्ययन केन्द्र द्वारा भाखड़ा–नंगल परियोजना के बारे में किये गये अध्ययन[*] के कुछ प्रमुख निष्कर्ष

आम धारणा है कि भारत में हरित क्रांति भाखड़ा बाँध से आई है। इस मिथक को तकनीकविदों/अफसरशाही विशेषकर जल संसाधन मंत्रालय ने बड़ी चतुराई से हवा दी है। इसके तहत ऐसा माहौल बनाया गया कि भाखड़ा से ही सिंचाई और खाद्यान्न उत्पादन बढ़ा है तथा इसी बाँध ने पंजाब–हरियाणा को देश के अनाज भण्डार में बदल दिया है। यही बात स्कूल की पाठ्य पुस्तकों में पढ़ाई जाती है और बगैर कोई सवाल किये इसे स्वीकार भी कर लिया जाता है जबकि वास्तविकता यह है कि अभी तक ऐसा कोई अधिकृत अध्ययन तक नहीं हुआ है जिसमें भाखड़ा बाँध की सिंचाई और खाद्यान्न उत्पादन की पड़ताल की गई हो। वित्तीय, पर्यावरणीय और सामाजिक प्रभावों की बात ही छोड़िये।

यह रपट भाखड़ा बाँध की सिंचाई और खाद्यान्न उत्पादन में उसकी भूमिका की समीक्षा करने का एक प्रयास है। इस प्रकिया में हमने भाखड़ा के इतिहास और भूगोल पर भी दृष्टि डाली है। साथ ही भाखड़ा की अनुपस्थिति में होने वाली संभावित परिस्थिति की समीक्षा भी की है। इस अध्ययन के निष्कर्ष आँखे खोल देने वाले सिद्ध हुए है।

भाखड़ा परियोजना की आयोजना और निर्णय प्रक्रिया का विश्लेषण यह बताता है कि परियोजना की मूल संकल्पना और फिर उसका लगातार विस्तार (प्रस्तावित ऊँचाई व भण्डारण क्षमता बढ़ते जाना) पानी की समस्या का सबसे अच्छा और उचित हल ढूँढने की प्रक्रिया का हिस्सा नहीं था। बल्कि विभाजन के पहले के पंजाब और सिंध राज्यों के बीच पानी के बँटवारे को लेकर चल रहे झगड़े में एक हथियार और दबाव बनाने के साधन के रूप में था। बड़े बाँधों के आयोजन में अक्सर ऐसा होता है और भाखड़ा कोई अपवाद नहीं था।

आम धारणा यही है कि भाखड़ा के पहले पंजाब में सिंचाई नहीं थी। इस गलत धारणा को बी॰जी॰ वर्गीस जैसे टिप्पणीकारों ने प्रोत्साहन दिया। उन्होंने 1994 में एक लेख में लिखा था –

> ''इसमें कोई संदेह नहीं की हरितक्रांति ने पंजाब और हरियाणा की तस्वीर बदल दी है और भाखड़ा और पोंग के बगैर यह संभव नहीं था। पंजाब और हरियाणा इनके पानी से वंचित होने पर कुछ अनिश्चित इननडेशन नहरों[#] को छोडकर अर्ध शुष्क जमीन के टुकडे भर होते।''

वास्तव में 1953-54 में जब भाखड़ा से सिंचाई शुरू हुई तब पंजाब–हरियाणा का सिंचित क्षेत्र 74.7 लाख एकड़ का था, जो भाखड़ा से हुई सिंचाई से तीन गुना अधिक है। इनमें से कुछ सिंचाई तंत्र तो 19 वी शताब्दी के मध्य में शुरू हो चुके थे। भाखड़ा कमान क्षेत्र का काफी हिस्सा तो ठीक–ठाक सिंचित था। कमान क्षेत्र के कुछ जिलों का तो आधे से भी अधिक हिस्सा सिंचित था। पंजाब का कृषि उत्पादन भी देश की तुलना में बेहतर था। 1953-54 में देश का 20 प्रतिशत गेहूँ अकेला पंजाब पैदा करता था।

आम धारणा के विपरीत भाखड़ा का सकल कमान क्षेत्र (Gross Command Area) पंजाब के भौगोलिक क्षेत्र का मात्र 18.6 प्रतिशत और हरियाणा का मात्र 30 प्रतिशत ही है। वास्तव में पंजाब– हरियाणा भाखड़ा से कहीं अधिक है। यह तो है कमान क्षेत्र। अगर प्रत्यक्ष सिंचाई देखें (जो आमतौर पर कमान क्षेत्र से कम ही होती है) तो सिंचाई का बड़ा हिस्सा भूजल यानी ट्यूबवेल (भाखड़ा कमान में भी) पर निर्भर है। वर्ष 2001-02 में पंजाब का मात्र 24.33 प्रतिशत क्षेत्र नहर से सिंचित था जिसमें से अधिकांश हिस्सा तो भाखड़ा के पूर्व से प्रारंभ हुई सरहिन्द, अपर बारी दोआब नहर जैसी तथा हरिके और अन्य सिंचाई तंत्रों से सिंचित था। पंजाब के भाखड़ा कमान के जिलों के मात्र 1.5 से 19 प्रतिशत तक हिस्से ही नहर से सिंचित है।

---

[*] *Unravelling Bhakra: Assessing the Temple of Resurgent India*; Shripad Dharmadhikary, Manthan Adhyayan Kendra, Badwani (MP) 451 551

[#] एक प्राचीन सिंचाई प्रणाली जिसमें बाढ़ के दौरान नदियों के पानी को गुरूत्वीय बल के माध्यम से खेतों में ले जाया जाता था।

हरियाणा में नहर से सिंचाई का प्रतिशत् लगभग 50 होकर पंजाब से बेहतर है, लेकिन इस राज्य की तस्वीर भी पंजाब से भिन्न नहीं है। 1960 के दशक के उत्तरार्ध में ही पंजाब में ट्यूबवेल द्वारा सिंचित क्षेत्र नहर सिंचित क्षेत्र से अधिक हो गया था। 1990 और 2001-02 के बीच पंजाब में नहर से शुध्द सिंचित क्षेत्र (Net Area Irrigated) 15.76 लाख हेक्टर से घटकर 9.87 हेक्टर रह गया जबकि इसी दौरान ट्यूबवेल से सिंचाई 22.33 लाख हेक्टर से बढ़कर 30.68 लाख हेक्टर हो गई। यह इस कारण हुआ कि नहर की अपेक्षा ट्यूबवेल सिंचित जमीन की उत्पादकता अधिक थी, क्योंकि ट्यूबवेल पर किसानों का स्वयं का नियंत्रण होता है। यह ध्यान रखने वाली बात है कि 1960 के दशक में प्रारंभ हुए उन्नत बीजों (High Yielding Varieties) के लिए समय पर सिंचाई महत्वपूर्ण होती है। पंजाब में आई हरितक्रांति को भाखड़ा से जोड़ने के मिथक की सच्चाई इन आँकड़ों से स्पष्ट होती है। यह प्रचलित मान्यता भी निराधार है कि पंजाब में सिंचाई भाखड़ा की वजह से आई और पंजाब के कृषि उत्पादन में हुआ भारी इजाफा भी भाखड़ा के कारण था।

अक्सर यह कहा जाता है कि जो भूजल सिंचाई के लिए इस्तेमाल किया जा रहा है, उसका अधिकांश हिस्सा तो नहरों से ही रिचार्ज हुआ है। पर ध्यान रहें कि ऐसे रिचार्ज के लिए केवल नहर की ही आवश्यकता है बाँधों की नहीं। पंजाब में नहरों द्वारा जो भूजल का रिचार्ज हुआ है उसका बड़ा हिस्सा तो उन नहरों, जो भाखड़ा के दशकों पहले बनी हुई है, से रिचार्ज हुआ है।

यहाँ महत्वपूर्ण बात यह है कि भूजल के रूप में सदियों से संचित पानी को असंतुलित (Un sustainable) तरीके (यानी वह भूजल रिचार्ज नहीं हो रहा है) से निकाला जा रहा है। यह अध्ययन बताता है कि पंजाब का 43 प्रतिशत कृषि उत्पादन और हरियाणा का 35 प्रतिशत कृषि उत्पादन इसी प्रकार असंतुलित दोहन पर निर्भर है। इस अध्ययन से यह चौंकाने वाला तथ्य सामने आया कि भाखड़ा बांध के माध्यम से सतलुज जल से होने वाली सिंचाई में विशेष वृद्धि नहीं हुई। सतलुज नदी का करीब सारा पानी (विभाजन के पहले से ही) विभिन्न सिंचाई परियोजनाओं के माध्यम से उपयोग में लाया जा रहा था। इसमें सतलुज घाटी परियोजना (जिसका अधिकांश हिस्सा अब पाकिस्तान में है) प्रमुख थी। इसकी एक मुख्य वजह थी कि सतलुज का बहाव बर्फ और बारिश दोनों की वजह से है। अतः इस पर इतना बड़ा बाँध बनाने का कोई औचित्य नहीं था। भाखड़ा बाँध जरूरत से अधिक क्षमता का बनाया गया है। यह इस तथ्य से भी प्रमाणित होता है कि अधिकांश सालों में बाँध पूरा भरा ही नहीं है।

भाखड़ा बाँध ने सिंचाई बढ़ाई नहीं अपितु डाउनस्ट्रीम (पाकिस्तान) में हो रही सिंचाई को अपस्ट्रीम (भारत) में स्थानांतरित कर दिया। परिणामस्वरूप बाँध के नीचे नदी का बहाव लगभग खत्म हो गया, जिसका गंभीर असर नीचवास की सिंचाई, मछुआरों और किनारे पर बसे अन्य समूहों को भुगतना पड़ा है।

भाखड़ा बनने के कई वर्षों बाद तक भी न तो भारत की खाद्यान्न स्थिति में कोई फर्क पड़ा और न ही पंजाब और हरियाणा के इसमें योगदान में। 1966 में हमारा खाद्यान्न उत्पादन नाटकीय रूप से बढ़ा जिसे *हरितक्रांति* कहा जाता है। अर्थात् हरितक्रांति भाखड़ा से सिंचाई शुरू होने के कोई 12 वर्षों बाद आई थी। यही वर्ष हमारे देश में अधिक उपज वाले बीजों के प्रारंभ होने का भी था। यह सही है कि अधिक उपज वाले बीजों को बहुत अधिक तथा सही समय पर पानी चाहिये, जो भूजल से ही संभव हो पाया। भाखड़ा का योगदान सीमित रहा।

1966 के बाद हरियाणा–पंजाब में बढ़े हुए खाद्यान्न (ज्यादातर गेहूँ–चावल) उत्पादन का श्रेय भाखड़ा को देना गलत है। पंजाब में खाद्यान्न उत्पादन 1964-65 में 41.64 लाख टन से 1985-86 में बढ़कर 172 लाख टन हो गया। इसी दौरान हरियाणा में यह उत्पादन 19.85 लाख टन से 81.46 हो गया। यह बढ़ौतरी मुख्यतः गेहूँ और चावल में थी लेकिन शेष फसलें इन्हीं वर्षों के दौरान दोनों राज्यों में घट गई। वास्तव में पंजाब में दालों का उत्पादन 1966-67 में जो 13 लाख टन था, 1985-86 में घटकर मात्र 6.8 लाख टन रह गया और उसके बाद भी यही क्रम जारी है। पंजाब में गेहूँ–चावल का कृषि क्षेत्र 1966-67 में 46 प्रतिशत था जो 2002 में बढ़कर 78 प्रतिशत हो गया। इसी प्रकार हरियाणा में गेहूँ–चावल का क्षेत्र 1966-67 में मात्र 23 प्रतिशत था जो 1994 तक बढ़कर 57 प्रतिशत हो गया था। इस दौरान दलहन–तिलहन का क्षेत्र न सिर्फ घटा बल्कि

इसकी उत्पादकता में भी कमी आई। उदाहरणार्थ कपास (रूई) का उत्पादन 1990 में 570 किलोग्राम/हेक्टर था जो 1999 तक 203 किलो/हेक्टर रह गया। अर्थात् 9 वर्षों में उत्पादन मे 65 प्रतिशत की कमी आई। स्पष्ट रूप से हरियाणा और पंजाब में खेती मात्र गेहूँ–चावल का चक्र बनकर रह गई है। इसका एक मुख्य कारण पानी का बहुतायत उपयोग (सिंचाई), रासायनिक खाद और कीटनाशक है, जिसकी वजह से वहाँ की मिट्टी अन्य फसलों के योग्य नहीं रह गई है। यही नहीं, पिछले कुछ सालों में पंजाब–हरियाणा में गेहूँ–चावल की उत्पादकता में भी ठहराव आ गया है। किसानों को वही उत्पादकता बनाये रखने के लिए अधिक मात्रा में खाद और दवाईयों का उपयोग करना पड़ रहा है।

पंजाब सरकार द्वारा पंजाब के कृषि क्षेत्र में संकट का अध्ययन करने हेतु गठित जोहल कमिटी ने अपनी अक्टूबर 2002 की रिपोर्ट में पंजाब की खेती के संदर्भ में एक बहुत ही दुखद तस्वीर पेश की है। इस रिपार्ट के मुताबिक –

> ''पंजाब के सिंचित क्षेत्र में गेहूँ–चावल के लगातार उत्पादन के कारण मिट्टी, पानी, पर्यावरण और वहां के सामाजिक ताने–बाने पर गंभीर प्रभाव पड़ रहा है। पंजाब की भूमि वास्तव में एक प्रयोगशाला बन चुकी है जिसमें उतना ही उत्पादन (गेहूँ और चावल का) पाने के लिए और अधिक रासायनिक खादों, सूक्ष्म पोषक तत्वों, कीटनाशकों, कीटाणुनाशकों आदि के उपयोग की आवश्यकता पड़ रही है। दिन प्रतिदिन स्थिति बहुत गंभीर – आर्थिक दृष्टि से विपत्तिजनक, सामाजिक रूप से कमजोर (Untenable) तथा राजनैतिक दृष्टि से अस्थिर – स्थितियाँ बनती जा रही है और यदि इस पर उचित ध्यान नहीं दिया जाता है तो यह मानव निर्मित राष्ट्रीय आपदा बन सकती है।''

इसी प्रकार का निष्कर्ष एच॰एस॰ शेरगिल ने पंजाब सरकार द्वारा पंजाब में ग्रामीण साख और ऋणग्रस्तता के संबंध में करवाए गए अध्ययन का भी है –

> ''पंजाब में पिछले एक दशक के दौरान खेती के आधुनिकीकरण का एक दूसरा पहलू सामने आया है। अधिक मात्रा में आधुनिकीकरण और इस पर बढ़ते खर्च के बावजूद उत्पादकता में लगातार ठहराव दिखाई दे रहा है। पिछले दस सालों (1985-86 से 1995-96) में गेहूँ की उत्पादकता में धीमी गति से बढौतरी दिख रही है। चावल की उत्पादकता में ठहराव और कपास की उत्पादकता में कमी आई है। इसी तरह गन्ना, मक्का और आलू की उत्पादकता में ठहराव आया है। यह स्पष्ट रूप से दिखाई दे रहा है कि प्रत्येक फसल में शुध्द आय (नेट वेल्यू) प्रति एकड में पिछले दस वर्षों में ठहराव आया है लेकिन इसी दौरान पंजाब में किसानों द्वारा वही उत्पादन लेने के लिए किये जाने वाले खर्च में लगातार बढ़ौतरी हो रही है, जिसकी वजह से लगातार शुध्द अतिशेष (हर फसल में) में कमी हो रही है। इस वजह से पंजाब के किसान आज कर्ज पर निर्भर हो गये हैं।
>
> पिछले कुछ सालों से किसान मुख्य फसल की उत्पादकता की कमी के बारे में चर्चा कर रहे है।''

शेरगिल का अध्ययन दर्शाता है कि पंजाब के किसानों की कर्ज की गंभीर स्थिति हो चुकी है। अध्ययन में पाया गया कि 82.9 प्रतिशत किसान अलग–अलग संस्थाओं से खेती के लिए कम अवधि के कर्ज ले रहे हैं। यह कर्ज औसतन 3,590 रूपये प्रति एकड़ पाया गया है। 70 प्रतिशत छोटे किसान अपना फसल उत्पादन बेचने के बाद भी लघु अवधि के ऋण की पूरी तरह से भरपाई करने में असफल रहें क्योंकि कर्ज साहुकारों से लिया जाता है जिसकी ब्याज दर बहुत अधिक होती है। इसलिए हम समझ सकते है कि पंजाब के किसानों की स्थिति कितनी गंभीर है। पंजाब की खेती एक गंभीर समस्या बन चुकी है और पंजाब के कई किसानों को आत्महत्या की ओर धकेल चुकी है। कृषि में अगुआ समझे जाने वाले राज्य के लिए यह दर्दनाक तथ्य है।

यह कहा जाता है कि भाखड़ा परियोजना से हरियाणा के हिसार क्षेत्र – ज्यादातर सूखाग्रस्त जिलों – को फायदा हुआ है। परन्तु यह वही क्षेत्र है जहाँ दलदलीकरण और क्षारीयकरण की गंभीर समस्या पैदा हो गई है। इन दोनों राज्यों के नहरों से सिंचित क्षेत्र में यह समस्या गंभीर रूप धारण कर चुकी है। चौधरीचरण सिंह कृषि महाविद्यालय हिसार के कुलपति के मुताबिक –

> ''हरियाणा के मध्य और दक्षिणी–पूर्वी क्षेत्र में ..... नहर से सिंचाई के कारण भूजल स्तर में बढ़ौतरी की समस्या, क्षारीयकरण, दलदलीकरण, बाढ़ की समस्या बढ़ी है। .....राज्य में करीब 4,000 वर्ग किलोमीटर क्षेत्र दलदलीकरण और क्षारीयकरण से ग्रस्त हो चुका है। अगर उचित तरीके नहीं अपनाये गये तो अगले 2-3 दशकों में 20,000 वर्ग किलोमीटर क्षेत्र में यह समस्या उत्पन्न होने की संभावना है।''

इसका यह अर्थ है कि हरियाणा का 14 प्रतिशत सिंचित क्षेत्र इस समस्या से ग्रस्त है और यह बढकर 70 प्रतिशत हो सकता है। भारत सरकार द्वारा 1991 में दलदलीकरण की समस्या के अध्ययन हेतु गठित एक कार्य समूह ने अपनी एक रपट में कहा है कि –

> ''पंजाब के फरीदकोट, फिरोजपुर और भटिण्डा जिलों में पिछले वर्षों में दलदलीकरण की गंभीर समस्या उत्पन्न हुई है। जलस्तर में लगातार वृध्दि हो रही है ..... इस क्षेत्र का बडा हिस्सा दलदलीकरण का शिकार है जिसकी वजह से हजारों हेक्टर जमीन कृषि योग्य नहीं रही है, मकान ध्वंस्त हो रहे है, सड़कों को नुकसान पहुँचा है। यह अनुमान लगाया गया है कि दलदलीकरण की समस्या से ग्रस्त क्षेत्र करीब 2 **लाख हेक्टर** है।

हमारी अध्ययन यात्रा के दौरान भी हमने महसूस किया कि नहर द्वारा सिंचाई की वजह से जलभराव, दलदलीकरण व क्षारीयकरण की समस्या गंभीर रूप से उभरी है।

यह स्पष्ट है कि हरितक्रांति का 'जादू' अब अतीत बन चुका है। सन 1990 में प्रति व्यक्ति अन्न उपलब्धता 510 ग्राम थी जो दस ही सालों यानी 2001 में 416 ग्राम रह गई है। उल्लेखनीय है कि हरितक्रांति की शुरूआत के पहले 1965 में यह 480 ग्राम थी। यह गिरावट गेहूँ और चावल छोड़ कर दलहनों – जिससे भोजन में प्रोटीन का बड़ा हिस्सा आता है – के लिए तो और भी अधिक थी। और यह तथाकथित खाद्यान्न उपलब्धता भी गरीब तबके के लोगों की हैसियत में नहीं है। यह इसलिए भी हो रहा है कि लोगों के पास खाद्यान्न खरीदने या संग्रहित करने के लिए भी पर्याप्त पैसा नहीं है और खाद्यान्न का एक बड़ा हिस्सा भारतीय खाद्य निगम के भण्डारों में या तो सड़ रहा है या फिर मिट्टी के मोल निर्यात किया जा रहा है। जोहल समिमि ने इस विडंबना को निम्न शब्दों में बयान किया है –

> ''भारत ने खाद्यान्न का इतना बड़ा भण्डार संग्रहित किया है कि एक तरफ तो उसके लिए बाजार उपलब्ध नहीं हो रहा है दूसरी तरफ इसे बचाये रखने में सरकार को भारी खर्च उठाना पड़ रहा है। इससे यह राज्य के मुद्रा विनियोग के बोझ को बढ़ाने वाला साबित हो रहा है। साथ ही सरकार मौजूदा न्यूनतम समर्थन मूल्य पर मौसम दर मौसम नया कृषि उत्पाद खरीदने को बाध्य हो रही है। ऐसे तो भारत की जनसंख्या के पोषण आहार की जरूरतों के हिसाब से इस भण्डारण को अधिक नहीं माना जाना चाहिए, पर गरीब जनता की क्रयशक्ति की गैर मौजूदगी में मांग की तुलना में आपूर्ति अत्याधिक है।

यह अपनाई गई कृषि नीतियों का अपरिहार्य परिणाम है। नीतियों का उद्देश्य खाद्यान का विक्रयक्षम आधिक्य बढ़ाना था न कि जन समुदाय के एक बड़े हिस्से की पोषण की जरूरतों की पूर्ति करना। इसलिए पूरा जोर कुछ चयनित क्षेत्रों में लागत पर केन्द्रित करने का था। भाखड़ा जैसी परियोजना केन्द्रीकृत कृषि को आगे बढ़ाने के लिए लगने वाला आधारभूत ढांचा मुहैया करवाती है। कृषि क्षेत्र के नीति निर्धारकों (जो कि हरित क्रांति के माध्यम में बढ़े हुए उत्पादन से तो गद्‌गद् होते हैं पर बहुसंख्यक समाज की क्रयशक्ति के अभाव के प्रति चिंतित नहीं है।) का यह आकर्षण मौजूदा आर्थिक नीति निर्धारकों के सकल घरेलू उत्पाद में वृद्धि के प्रति आकर्षण से मिलता–जुलता है जो कि बढ़ती बेरोजगारी व गरीबी के साथ–साथ चलता दिखाई दे रहा है।

अन्य बड़े जल संग्रहण बाँधों की तरह भाखड़ा से भी कई अन्य समस्याएँ खड़ी हुई है। हजारों लोगों का विस्थापन (जिनका पुनर्वास नहीं हुआ है), लोगों की आजीविका खत्म होना, अनेक गंभीर पर्यावरण प्रभाव –

जंगल, मछली और जीवों का खत्म होना, बिमारियों में बढौतरी, दलदलीकरण, इत्यादि। बड़े बाँध पर्यावरण से बड़े पैमाने पर छेड़छाड़ करने के प्रतीक है, जिसमें कमान क्षेत्र और नीचवास (डाउन स्ट्रीम) के क्षेत्र शामिल हैं।

कृषि नीति के प्रभाव में कीटनाशक और रासायनिक खादों के उपयोग का स्वास्थ्य पर व्यापक दुष्प्रभाव हो रहा हैं। खेती में कीटनाशकों के प्रयोग के कारण खाद्यान्नों में उनका प्रवेश और जल प्रदूषण से केंसर जैसी असाध्य बिमारियों की बढ़ौतरी हम फिलहाल देख ही रहे हैं और आगे और भी देखना पड़ेगी। रासायनिक खादों के उपयोग से पैदा हुए खाद्य पदार्थ जैविक खाद के उपयोग से पैदा हुए खाद्य पदार्थों की तुलना में कम पौष्टिक होते हैं, जिसके चलते लोगों में पौष्टिकता की कमी से होने वाली बिमारियों में बढ़ोतरी होगी।

भाखड़ा जैसी योजनाओं की चर्चा में यह तर्क पेश किया जाता है कि अकाल और खाद्यान्न की कमी को ध्यान में रखते हुए इस प्रकार की कृषि नीति अपनाने की जरूरत पड़ी थी। लेकिन, यह सच नहीं है कि खाद्यान्न और सिंचाई को बढ़ाने के लिए केवल इसी प्रकार की योजनाओं और नीतियों का रास्ता रह गया था। एक तो सच्चाई यह है कि इन सबमें भाखड़ा का सीमित योगदान है। इसके अलावा छोटी जल संग्रहण परियोजनाओं के अनुभव ने यह दिखा दिया है कि वे सिंचाई को बढ़ाने का एक कम खर्चीला तरीका है। इन योजनाओं का क्रियान्वयन भी तेजी से हो सकता है एवं विकेद्रिकृत होने के कारण प्रभाव भी समतामूलक है। ऐसी नीतियों के कारण लाभ समान और व्यापक होता। इसके चलते खाद्यान्नों में विविधता होती है जो कि आर्थिक और पौष्टिकता के संदर्भ में लाभदायक होती है और बेशक जमीन का व्यापक रूप में विनाश भी नहीं होता और खाद्य सुरक्षा भी कायम रहती। यदि वास्तव में ऐसा होता तो यह परिस्थिति नहीं आती कि एक तरफ हजारों टन खाद्यान्न गोदामों में सड़ता रहता और दूसरी तरफ लोग भूख से मरते रहते है।

यह कहा जाता है कि विकेन्द्रिकृत वर्षाजल संग्रहण के लाभ अभी–अभी सामने आये हैं जिसके कारण इसे 1950 और 1960 के दशक की नीतियों में शामिल नहीं किया जा सकता था। हमारा अध्ययन इसे गलत करार देता है। वास्तव में उस समय भी यह उपाय कई जगह अमल में लाये गये थे और कई लोगों ने इन उपायों को स्पष्ट रूप से वैकल्पिक नीतियों के लिए सुझाया भी था इन उपयों के पक्ष में रखी दलीलों में उत्पादन बढ़ाने के अलावा रोजगार बढ़ाना भी शामिल था। जिन लोगों के हाथ में नीति बनाने की जिम्मेदारी थी, वे केन्द्रीकृत योजनाओं के प्रति आकर्षित थे और इसलिए यह अन्य रास्ते उन्हें पसन्द नहीं आये।

सारांश

- आम समझ के विपरीत भाखड़ा के पहले भी पंजाब में अच्छी खासी सिंचाई थी। हालांकि, भाखड़ा के कारण चलते सतलज से सिंचाई की बढौतरी नहीं हुई। भाखड़ा द्वारा पाकिस्तान में जो कमान क्षेत्र था वह वहां से स्थानांतरित होकर भारत में आ गया।

- भाखड़ा के संदर्भ में प्रचलित मान्यता के विपरीत, पंजाब और हरियाणा में सिंचाई बढ़ने का मुख्य कारण भूजल का दोहन हैं, न कि भाखड़ा।

- 1965 (हरित क्रांति) के पश्चात पंजाब में जो खाद्यान्न की उपज बढ़ी वह उच्च उपज वाले बीजों (High Yielding Variety) के कारण थी। साथ ही भारी मात्रा में रासायनिक खादों एवं कीटनाशको का उपयोग करना पड़ा और किया गया। 'हरित क्रांति' भाखड़ा के क्रियांवयन के पूरे 12 साल बाद शुरू हुई। हरित क्रांति में भाखड़ा की भूमिका सीमित थी।

- भाखड़ा के कारण कुछ इलाकों में केन्द्रित गहन सिंचाई उपलब्ध हुई। उपज बढ़ाने, खासकर ऐसी बढ़ौतरी जिसे कि बेचा खरीदा जा सके, के लिए बनाई गई नई कृषि नीति के तहत यह जरूरी था, जिसमें उच्च उपज वाली किस्में, गहन सिंचाई, बड़ी मात्रा में रासायनिक खाद एवं कीटनाशक भी शामिल थे। परिणामस्वरूप, फसलचक्र पर गेहूँ–चावल की प्रमुखता (dominance) है। बड़े पैमाने पर क्षेत्र में दलदलीकरण, क्षारीयकरण हुआ है। भारी मात्रा में रासायनिक खाद आदि के उपयोग से जमीन की उर्वरा शक्ति कम हो गई है। उतना ही उत्पादन बनाए रखने के लिए अधिकाधिक मात्रा में

उर्वरकों/दवाईयों की जरूरत पड़ने लगी है। मुख्य फसलों की उत्पादकता में ठहराव आया है। किसान कर्जे में डूब रहे हैं और कई किसान आत्महत्या करने पर मजबूर हुए है। दूसरी तरफ भारी मात्रा में अनाज का संग्रहण होते हुए भी लाखों लोग भूखे हैं।

भाखड़ा के हमारे अध्ययन के निष्कर्ष, भाखड़ा और उससे संबंद्ध कृषि नीति – जिसे हरित क्रांति के श्रेय से जोड़ा जाता है – का जोरदार खण्डन करते हैं। परन्तु चौंकाने वाली बात यह है कि हमारे देश के खेती–पानी के नीति निर्धारक भाखड़ा के ऐसे मिथक के प्रचार में लगे हुए हैं जिनका वास्तव में कोई आधार नहीं हैं। बिना तथ्यों के अध्ययन या भाखड़ा से वास्तविक सिंचित क्षेत्र या कृषि उत्पादन के अध्ययन के बगैर ही पिछले 40 वर्षों से इस प्रकार का प्रचार कर रहे हैं। इससे भी ज्यादा गंभीर बात यह है कि सरकारी रिपोर्ट में ही गिरती उत्पादकता, क्षारीकरण–दलदलीकरण, अन्न उपभोग में गिरावट, किसानों की बढ़ती कर्ज समस्या एवं आत्महत्याएँ वगैरह दर्शाई गई है, जो स्पष्ट रूप से हरितक्रांति के ढह जाने का संकेत दे रही है। फिर भी अपने नीति निर्धारक इस समस्या से अपना मुँह फेर रहे हैं। इस समस्या का सामना करने के बदले वे नदी जोड़ परियोजना, जिसमें भाखड़ा जैसी कई परियोजनाएँ शामिल होगी, को आगे बढ़ाने में व्यस्त हैं। हम शायद यह मान सकते हैं कि जिन्होंने भाखड़ा परियोजना और उसे लेकर उत्पन्न हुई कृषि नीतियों को प्रोत्साहित किया, वे वास्तव में मानते थे कि यही एक तरीका अन्न स्वावलंबन के लिए उपलब्ध है। भले ही वे इस मान्यता में गलत थे। परन्तु अब ये मानना गलत होगा कि आज के नीति निर्धारक इन्हीं नीतियों को इसी आधार पर बढ़ा रहे हैं जबकि इन नीतियों की असफलता के बारे में स्पष्ट तथ्य उपलब्ध है।

मंथन अध्ययन केन्द्र,
दशहरा मैदान रोड़,
बड़वानी (म.प्र.) 451 551